नवंबर १९९२ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धम्मवाणी

यतं चरे, यतं तिट्ठे, यतं अच्छे, यतं सये।
यतं समिञ्जये भिक्खु, यतमेन पसारये॥
उद्धं तिरियं अपाचीनं, यावता जगतो गति।
समवेक्खिता च धम्मानं, खन्धानं उदयब्बयं॥

– इतिवुत्तक , सम्पन्नसीलसुत्तं

संयत चले, संयत खड़ा हो, संयत बैठे, संयत लेटे। भिक्षु संयत ही सिकोड़े,संयत पसारे। ऊपर नीचे, आगे पीछे, आड़े तिरछे जहां तक लोक गति है, वहां तक धर्मों और पांच स्कन्धों [नाम और रूप] के उदय-व्यय का सम्यक् दर्शन करे।

ऐसे थे भगवान् बुद्ध!
आंखों देखा विवरण

भगवान् के जीवन काल की एक घटना।

उन दिनों भगवान् श्रावस्ती के पूर्वाराम विहार में ठहरे हुए थे। एक दिन विहार के बाहर खुले में बैठे थे। उस समय कौशल नरेश प्रसेनजित भगवान् के दर्शनार्थ आया। भगवान् को नमन कर वह एक ओर बैठ गया। थोड़ी सी देर में भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की भिन्न-भिन्न वेशभूषाओं और बाह्य आडम्बरों से परिपूर्ण पैंतीस साधु सामने सड़क पर से गुजरे। उन्हें देख कौशल नरेश आसन से उठा। उसने अपने उत्तरीय को एक कंधे पर रखा और दाहिने घुटने को जमीन पर रख उनकी ओर हाथ जोड़ कर तीन बार अपना परिचय दिया – "मैं कौशलराज प्रसेनजित हूं।" यह उन दिनों की एक अभिवादन प्रणाली थी।

उनके निकल जाने के बाद पुनः भगवान् की ओर आमुख हो नमन कर बोला – "भगवान्, ये सब अरहन्त हैं अथवा अरहन्त-पथगामी हैं?"

भगवान् ने बोधि-बल से उन छद्म-वेशियों की वास्तविकता जानी और उसके इस कथन को अस्वीकार किया। वस्तुतः वे पैंतीस के पैंतीस राज्य के गुप्तचर थे जो नाना प्रकार से प्रजा तथा पड़ोसी राज्यों की गतिविधियों की जानकारी कर, अपने उच्च अधिकारियों तक पहुँचाते थे। उस समय भगवान् ने कहा – "सामान्य गृहस्थ ऐसे स्वांगधारियों को देख कर गलत निर्णय कर लेते हैं। किसी के सही धर्माचरण को जानना हो तो थोड़े नहीं, बल्कि बहुत दिनों तक उसके साथ रहना चाहिए। बुद्धिमानी और बहुत ध्यानपूर्वक उसके जीवन-व्यवहार को, आचरण को, चाल-चलन को परखना चाहिए। बहुत से लोग धर्म के नाम पर व्यवसाय करते हैं, आजीविका चलाते हैं और लोगों को ठगते हैं, जो कि सर्वथा अनुचित है। **"धम्मेन न वणिं चरे।**"

एक अन्य अवसर पर भगवान् ने कहा –

न वाक्करणमत्तेन, वण्णपोक्खरताय वा।
साधुरूपो नरो होति, इस्सुकी मच्छरी सठो॥

धम्मपद १९ ७.

कोई व्यक्ति ईर्ष्यालु, मत्सरी, शठ हो, वह मात्र वाक्चतुर होने से अथवा सुन्दर रूपधारी होने से साधु रूप नहीं हो जाता। याने वह वास्तविक साधु नहीं होता।

समाज को ठगने वाले और गुमराह करने वाले ऐसे लोग होते ही रहते हैं जो बहुत चारुवाक [चार्वाक] होते हैं, और उनमें से किसी किसी का व्यक्तित्व भी बहुत भव्य, मोहक और आकर्षक होता है। परन्तु होते हैं वे बड़े शीलभ्रष्ट। ऐसे लोगों की पूरी जांच करके वास्तविकता का पता लगाना चाहिए। सही जांच तभी होती है जबकि लम्बे समय तक उनके साथ रह कर उनकी प्रत्येक गतिविधि को बुद्धिमानीपूर्वक बड़े ध्यान से देखा जाय।

***

तत्कालीन समाज के अन्य लोगों में भी संन्यासियों को परखने की ऐसी समझदारी थी। एक उदाहरण –उन दिनों विदेह जनपद की राजधानी मिथिला में ब्रह्मायु नामक एक दीर्घायु ब्राह्मण रहता था जो कि तत्कालीन समस्त वैदिक शास्त्रों में पूर्ण पारंगत, प्रसिद्ध विद्वान और सुप्रतिष्ठित आचार्य था। उन्हीं दिनों भगवान् बुद्ध पांच सौ भिक्षुओं के साथ विदेह जनपद की चारिका पर निकले थे। अब तक उन की बहुत प्रशस्ति-प्रशंसा फैल चुकी थी। ब्रह्मायु ने भी भगवान के बारे में अनेक मंगल-कीर्ति-शब्द सुने थे। परन्तु वह बहुत अनुभवी व्यक्ति था। अतः समझता था कि किसी बात को केवल लोक-प्रसिद्धि के आधार पर स्वीकार नहीं कर लेना चाहिए। भली-भांति जांच-परख करके ही सच्चाई को स्वीकारना चाहिए। १२० वर्ष की बढ़ी हुई आयु में ऐसी जांच के लिए वह स्वयं यात्रा करने में असमर्थ था। अतः उसने अपने विश्वसनीय और मेधावी युवा शिष्य, उत्तरमाणवक को बुलाया जो कि अपने गुरु के समान ही शास्त्रीय ग्रन्थों का परिपूर्ण विद्वान था। ब्रह्मायु ने उससे कहा – "जहां श्रमण गोतम इस समय चारिका कर रहा है वहां जाओ और स्वयं जांचो कि उसके बारे में जो कीर्ति-शब्द फैले हैं, क्या वह सच हैं या झूठ। मैं स्वयं यात्रा योग्य नहीं हूं। अतः तेरे माध्यम से श्रमण गोतम को जान सकूंगा।"

कोई भी व्यक्ति महापुरुष होने का दावा कर सकता है और किन्हीं कारणों से उसकी ऐसी प्रसिद्धि भी फैल सकती है। पर उसे भली भांति जांचना चाहिए। उन दिनों के वैदिक साहित्य में एक बहु प्रचलित ग्रन्थ था जिसमें महापुरुष के बत्तीस शरीर लक्षणों की बड़ी स्पष्ट व्याख्या थी। ब्रह्मायु ने अन्य सभी ग्रन्थों के साथ वह शास्त्र-ग्रन्थ स्वयं भी पढ़ा था और उत्तरमाणवक को भी पढ़ाया था। अतः उसका हवाला देते हुए समझाया – "शास्त्रों के अनुसार ऐसे शरीर-चिन्हों वाला व्यक्ति गृही रहने पर चक्रवर्ती सम्राट् होता है और गृह त्यागने पर खुला-कपाट सम्यक् सम्बुद्ध होता है। श्रमण गोतम महापुरुष है या नहीं, इसकी जांच शास्त्रोक्त आधार पर ही की जानी चाहिए। उसके शरीर-लक्षणों को तुम स्वयं देखो। अन्य अनेक प्रकार से भी पूरी-पूरी जांच करो।"

गुरु का आदेश पा कर उत्तरमाणवक वहां गया जहां भगवान् विहार कर रहे थे। वहां पहुँच कर भगवान् को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया और भगवान् के शरीर को ध्यानपूर्वक देखने लगा। महापुरुष के तीस शरीर-लक्षण वह सरलतापूर्वक देख पाया। तब भगवान् ने उसके मन की बात जान कर शेष दो भी दिखा दिये।

वह पूर्ण आश्वस्त हुआ कि श्रमण गोतम सभी शरीर लक्षणों से युक्त महापुरुष है पर जांच पूरी करने के लिए उसने निर्णय किया कि मैं लम्बे समय तक श्रमण-गोतम का अनुगमन करूंगा और उनका ईर्यापथ याने उनकी चाल-ढाल और रहन-सहन का भी निरीक्षण-परीक्षण करूंगा। अतः वह सात महीने तक भगवान् के साथ रहा, जिनमें से छः महीने तो छाया की भांति पीछे ही लगा रहा। वह बड़े ध्यान से बुद्धिमानीपूर्वक उन्हें जांचता-परखता रहा। सात महीनों के बाद वह अपने गुरु के निवास की ओर लौट चला। वहां पहुँच कर उसने अपने गुरु ब्रह्मायु को बताया कि उसने स्वयं भली-भांति जांच-जांच कर देखा है। महापुरुष के जिन बत्तीस शरीर लक्षणों का शास्त्रों में वर्णन है वे बत्तीस के बत्तीस श्रमण-गोतम के शरीर पर विद्यमान हैं। उसने एक-एक लक्षण गिन-गिन कर बताये। तदनन्तर उसने उस महापुरुष के सौम्य रहन-सहन की जो आंखों देखी रपट दी वह भारत के भूले हुए इतिहास के वे गौरवमय पृष्ठ हैं जो पड़ोसी देशों ने सम्भाल कर रखे हैं और जिनके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

उसने भगवान् की अत्यन्त अनुशासित चाल-ढाल का वर्णन करते हुए बताया कि जब वह चलते हैं तो सदा दाहिना पांव पहले उठाते हैं। न बहुत लम्बा डग रखते हैं न बहुत ओछा। न बहुत तेज चलते हैं, न बहुत धीमे। न घुटने से घुटना रगड़ कर चलते हैं, न टखनी से टखनी। जांघ को न ऊंचा उठाते हैं, न हिलाते हैं, न डुलाते हैं, न घुमाते हैं। चलते समय शरीर के नीचे के भाग के बल पर ही आगे बढ़ते हैं, ऊपर के भाग का कोई बल प्रयोग नहीं होता। अतः उसमें कोई हलन-चलन नहीं होती। चीवर उनके शरीर से न बहुत ऊपर रहता है, न बहुत नीचे, न बहुत सटा रहता है, न बहुत छिटका, और न ही हवा में फड़फड़ाकर उड़ता है। उनके शरीर में धूल-की चिड़ नहीं लग पाते क्योंकि वह शरीर को अच्छी प्रकार ढक कर चलते हैं।

चलते समय नजर न ऊपर उठाते हैं, न नीचे गिराते हैं और न ही इधर-उधर घुमाते हैं। सामने की भूमि पर केवल दो कदम की दूरी तक नजर टिकी रहती है, बाकी सारा ज्ञान-दर्शन। चलते हुए अपने शरीर पर नजर न ले जाते हुए भी उसका अनुभव करते हुए, उसे जानते हुए चलते हैं।

गृहस्थ के घर में प्रवेश करते हुए वह अपनी काया को न ऊंचा करते हैं न नीचा। न थोड़ा झुकते हैं न बहुत। अपने गौरव के अनुकूल शरीर की स्थिति रखते हैं। बिछे आसन की ओर जाते हुए काया को आसन से न अति दूर पलटते हैं, न अति समीप। वह न हाथ का सहारा लेकर आसन पर बैठते हैं और न ही मानो असहाय शरीर को पटकते हुए धम्म से बैठ जाते हैं। न उनके हाथों में चंचलता प्रकट होती है, न पांवों में। न घुटने पर घुटना चढा कर बैठते हैं, न टखने पर टखना और न ही ठुड्डी हाथ पर रख कर बैठते हैं। श्रमण-गोतम अत्यन्त निश्चल, स्वस्थ, स्वस्थित होकर बैठते हैं। वह सर्वथा **"अच्छम्भी, अकम्पी, अवेधी, अपरितस्सी, विवेकवत्तो, सो भवं गोतमो अंतरघरे निसन्नो होति"** – याने अभय, अकम्पित, अविचलित, अपरित्रषित, अरोमांचित और विवेकयुक्त रह कर श्रमण गोतम बैठते हैं। उनके विराजने में सौम्य गम्भीरता समाई रहती है।

भोजन ग्रहण करने के पूर्व वह अपने भिक्षा-पात्र को धोते हैं। उस समय जल ग्रहण करते हुए पात्र को न बहुत नीचा करते हैं, न बहुत ऊंचा, न कम झुकाते हैं न अधिक। पात्र धोने के लिए जल न कम लेते हैं न अधिक। पात्र धोते हुए खलखल की आवाज नहीं करते और न पात्र को उलट कर धोते हैं। पात्र को भूमि पर फेंक कर अपना हाथ नहीं धोते। पात्र धोते हुए उनका हाथ धुल जाता है, हाथ धोते हुए उनका पात्र। पात्र व हाथ धोने के काम में आये हुए जल को वह न अति दूर फेंकते हैं, न अति समीप और न हिला-डुला कर, घुमा-फिरा कर फेंकते हैं। यानि उनकी सारी हरकतें अत्यन्त अनुशासित होती हैं।

भोजन [भात] न अधिक ग्रहण करते हैं न कम। जैसे भोजन की निश्चित मात्रा जानते हैं वैसे ही व्यंजन याने तरकारी की भी। भोजन के ग्रास के साथ अधिक मात्रा में व्यंजन ग्रहण नहीं करते। भात चबा-चबा कर खाते हैं। पहला पूरी तरह निगल लेने के बाद ही दूसरा कौर मुँह में लेते हैं। भात का जूठन, मुँह से छुट कर, उनके शरीर पर कभी नहीं गिरता।

भोजन करते हुए वह उसके रस का अनुभव जरूर करते हैं, परन्तु उस आस्वादन में राग की प्रतिक्रिया नहीं होती। उनका आहार मौज-शौक, मद अथवा शरीर को सुन्दर बनाने के लिए नहीं होता। काया की यथा-आवश्यक स्थिति बनाये रखने, जीवन-धारा चलाने और शुद्ध धर्माचरण का जीवन निभा सकने के लिए जितना आवश्यक है उतना ही आहार ग्रहण करते हैं जिससे भूख की पुरानी वेदना दूर हो और नई नहीं जागे। श्रमण-गोतम का दैनिक आहार इन गुणों से परिपूरित होता है।

जैसे भोजनपूर्व, वैसे ही भोजनोपरान्त वह उसी संयमित रूप से पात्र और हाथ धोते हैं। अपने भिक्षा-पात्र के प्रति न तो अन्यमनस्क होते हैं और न ही आसक्त होकर उसकी सुरक्षा के बारे में चिन्तित रहते हैं। भोजन के बाद थोड़ी देर धर्मासन पर चुपचाप बैठते हैं। इतनी अधिक देर भी मौन नहीं बैठते जिससे कि भोजन दान के अनुमोदन के अनुकूल समय का अतिक्रमण हो जाय। भोजन का वह सदा अनुमोदन करते हैं, कभी निन्दा नहीं करते। अनुमोदन प्रकट करते हुए यह आभास नहीं होने देते कि उन्हें इस प्रकार का भोजन-दान फिर चाहिए अथवा और चाहिए। अनुमोदन करके जब देशना देते हैं तो धर्मकथा द्वारा **सन्दस्सेति** याने सम्यक् रूप से दर्शन करा देते हैं। धर्म का दर्शन माने भीतर सच्चाई देखना। बहुधा अपनी पूर्व पारमी के कारण कुछ लोग भगवान् की वाणी सुनते-सुनते भीतर की सच्चाई स्वतः देखने लगते हैं याने अनुभव करने लगते हैं। इसी माने में **सन्दस्सेति। समादपेति** याने उत्साहित कर देते हैं। भीतर देखने वाले का धर्म के प्रति उत्साह स्वतः जाग उठता है। **समुत्तेजेति** – भली प्रकार धर्म के प्रति उत्तेजित कर देते हैं। ऐसे व्यक्ति में धर्म संवेग जाग ही उठता है। **सम्पहंसेति** – उसे

प्रसन्न कर देते हैं। ऐसी कल्याणकारिणी देशना सुन कर श्रोता प्रसन्न हो ही उठता है।

तदुपरान्त जिस प्रकार आये थे उसी प्रकार नपे-तुले कदमों से विहार लौटते हैं। लौट कर बिछे आसन पर बैठते हैं और पांव धोते हैं। यह धोना पांव की सुन्दरता के लिए नहीं, मैल दूर करने के लिए होता है। फिर कुछ देर पालथी मार कर, काया सीधी रख कर, सजगता के साथ बैठते हैं। उस समय उनका चिन्तन न आत्म-पीड़न के लिए होता है, न पर-पीड़न या उभय-पीड़न के लिए। उनका चिन्तन सदा आत्महित, परहित, उभयहित और सर्वलोकहित होता है।

वे विहार में भिक्षु परिषद् को उत्साहित करने के लिए, न कि निरुत्साहित करने के लिए धर्म देशना देते हैं। भिक्षु परिषद् को भी वह उपरोक्त प्रकार से **सन्दस्सेति, समादपेति, समुत्तेजेति और सम्पहंसेति** – याने उत्साहित और आनन्दित करते हैं।

धर्मदेशना देते हुए उनके मुख से जो घोष होता है वह आठ अंगों से परिपूर्ण होता है। उनकी वाणी –

[१] **विसट्ठो** – याने विश्वसनीय और प्रामाणिक होती है।

[२] **विञ्ञेय्यो** –याने जानने योग्य होती है। सरलता से जानी समझी जा सकती है।

[३] **मञ्जू** – याने श्रवण-मधुर, कर्णप्रिय होती है।

[४] **सवनीयो** –याने श्रवण योग्य होती है। सुनने वाले के लिए कल्याण का कारण बनती है।

[५] **बिन्दु** –याने सारयुक्त होती है। उसमें कोई शब्द निस्सार नहीं होता।

[६] **अविसारी** –याने कटुताविहीन होती है क्योंकि करुणा से भरी होती है।

[७] **गम्भीरो** –याने गम्भीर होती है। उसमें छिछलापन नहीं होता। और

[८] **निन्नादी** –कांसे के बर्तन पर लगी चोट की झंकार सदृश होती है, जो सुनने वाले की हृदतंत्री को झंकृत कर देती है।

श्रोता-परिषद् जितनी बड़ी या छोटी होती है उसी के अनुरूप उनकी आवाज तेज या धीमी होती है। सारी परिषद् उन्हें सुन पाती है और उससे आगे आवाज नहीं जाती। यों अपने स्वर पर उनका पूरा अधिकार रहता है। उनकी धर्मदेशना सुन कर लोग जब लौटते हैं तो बिना पीठ दिखाए याने बिना मुड़े उनके दर्शनीय चेहरे को देखते-देखते चले जाते हैं। उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व और उतनी ही प्रभावशाली वक्तृता को श्रोतागण भुलाए नहीं भूल पाते। वह चिर-स्मरणीय बनी रहती है।

ब्राह्मणकुमार उत्तरमाणवक अपने गुरु ब्रह्मायु से आगे कहता है –"मैंने श्रमण गोतम को गमन करते देखा है, खड़े देखा है, गृहस्थ के घर में प्रवेश करते देखा है, भोजनोपरान्त अनुमोदन करते देखा है, अपने विहार लौटते देखा है, विहार में भी चुपचाप बैठे देखा है और अपनी परिषद् को धर्म उपदेश करते देखा है।"

इस प्रकार उसने उनकी सारी दिनचर्या एक बार नहीं बार-बार देखी। उसे सर्वथा निर्दोष ही नहीं बल्कि एक गृहत्यागी के लिए उच्च आदर्श स्वरूप पाया। यह सब देख कर वह बहुत प्रसन्न हुआ। भगवान् की गुणमयी दिनचर्या का यह सजीव विवरण प्रस्तुत करके भी वह सन्तुष्ट नहीं होता। तो अन्त में कहता है –

"एदिसो च, एदिसो च, सो भवं गोतमो।"

आप गोतम ऐसे हैं, ऐसे हैं और इतना ही नहीं,

"ततो च भिय्यो" –याने इससे भी कहीं अधिक हैं। कितना कहूं?

ध्यान देने योग्य बात है कि उत्तरमाणवक भगवान बुद्ध का भावुक भक्त या श्रद्धालु शिष्य नहीं था जो कि इतनी अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा करता। वह तो ब्राह्मण गुरु ब्रह्मायु का पट्ट शिष्य था जो कि अपने गुरु के आदेश पर श्रमण गोतम को जांचने परखने और उसकी यथातथ्य रपट प्रस्तुत कर सकने के लिए गया था। भगवान् को एक सरसरी निगाह से देख कर और उनके भव्य व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसने यह रपट नहीं दी। भगवान् के शरीर पर बत्तीस के बत्तीस महापुरुष लक्षण उसने स्वयं ध्यान से देखे। छः महीनों तक उनके पीछे छाया की भांति लगा रहा। एक तथ्यदर्शी समालोचक की तरह उनके रहन-सहन, चाल-ढाल, खान-पान, लोक-व्यवहार, धर्मदेशना तथा वाणी को बड़े ध्यान से और बुद्धिमानीपूर्वक परख कर देखा। तत्पश्चात् उसने यह आंखों देखा विवरण प्रस्तुत किया।

भगवान् का जीवन कितना भद्र है! भव्य है! शिष्ट है! शालीन है! सुन्दर है! संयत है! अनुशासित है। यह सुन कर ब्राह्मण ब्रह्मायु श्रद्धा विभोर हुआ और जिस दिशा में भगवान् विहार कर रहे थे, उस ओर मुड़ कर पंचांग प्रणाम करता हुआ तीन बार बोला –

"नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।"

शुद्ध सद्गुण और सदाचरण का ऐसा सजीव चित्रण सुन कर किसी भी समझदार की श्रद्धा जागनी स्वाभाविक है।

आओ, साधकों! हम भी श्रद्धापूर्वक सदाचरण का जीवन जीएं। इसी में मंगल कल्याण है।

कल्याणमित्र,
स. ना. गो.